सीएन परमसिवन व अन्य

बनाम

सनराइज प्लाजा टीआर पार्टनर और अन्य

(सिविल अपील सं. 2013 का 154)

9 जनवरी, 2013

[टी.एस. ठाकुर और श्रान सुधा मिश्रा, जे.जे.]

1-बैंकों और वित्तीय ऋणों की वसूली संस्थान अधिनियम 1993-धारा-29-आयकर अधिनियम, 1961-द्वितीय अनुसूची नियम 57- आरडीडीबी अधिनियम के तहत वसूली अधिकारी द्वारा आयोजित नीलामी को उच्च न्यायालय द्वारा आयकर अधिनियम की अनुसूची द्वितीय के नियम 57 की पालना नहीं किए जाने पर अवैध व शून्य घोषित किया गया - क्या आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 आयकर अधिनियम के द्वितीय अनुसूची के आयकर अधिनियमों की वसूली के मामलों में पूरे बल के साथ लागू होते हैं - धारा 29 में ''जहॉ तक संभव हो'' अभिव्यक्ति - क्या प्रत्येक प्रकरण के तथ्य व परिस्थितियों में नियमों को लागू करना वसूली अधिकारी के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है - अभिनिर्धारित किया गया - आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 यह स्पष्ट करती है कि आयकर अधिनियम के तहत नियम ''जहॉ तक संभव हो'' ही लागू होते हैं और आयकर अधिनियम के बजाय आरडीडीबी अधिनियम के प्रावधान और नियम संशोधनों के साथ

लागू होंगे - अभिव्यक्ति ''जहाँ तक संभव हो'' और ''आवश्यक संशोधनों के साथ''- को धारा 29 में परिस्थितियों की उचित देखभाल करने के लिए प्रयोग किया गया है, जहाँ कि आयकर अधिनियम के नियम आरडीडीबी अधिनियम की योजना के तहत लागू नहीं होते हैं - धारा 29 में प्रयुक्त शब्द ''जहाँ तक संभव हो'' के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि यह वसूली अधिकारी को आरडीडीबी अधिनियम के नियम विशिष्ठ परिस्थितियों में लागू करने के संबंध में विवेकाधिकार प्रदान करता है - जबकि शब्द ''जहाँ तक संभव हो'' एक निश्चित अंतर्निहित लचीलेपन का संकेत हो सकता है। उस लचीलेपन का दायरा जो बिल्कुल नहीं है, केवल वहीं तक है - आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 में प्रयुक्त शब्द ''जहाँ तक संभव हो'' का सबसे अच्छा अर्थ यह हो सकता है कि आयकर अधिनियम वहां लागू नहीं होता है, जहाँ उन्हें लागू करना योजना और विधान के संबंध में बिल्कुल भी संभव नहीं है - धारा 57 के तहत प्रावधान बाध्यकारी है - सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 84, 85 व 86 के समान ही है -अधिनियम 57 व 58 अपनी प्रकृति में बाध्यकारी है - उक्त नियमों की पालना नहीं किया जाना कानून की नजर में गैर कानूनी नीलामी होगी। सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 21 के नियम 84, 85 व 86

विधानों की व्याख्या - प्रभाव-अभिनिर्धारित किया गया ''एक पूर्ववर्तीय अधिनियम के बाद एक पश्चात्वर्ती अधिनियम में पूर्ववर्ती अधिनियम के प्रावधानों को शामिल किए जाने का प्रभाव यह होगा कि वे

पश्चात्वर्ती अधिनियम में प्रथम बार डाले गए नियम माने जाएंगे। एक बार ऐसा किए जाने के बाद ऐसे डाले गए नियम पश्चात्वर्ती अधिनियम के अभिन्न अंग हो जाएंगे - इसके पश्चात्वर्ती अधिनियम के कानूनों को संशोधित करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है और कोई भी बाद का संशोधन किया जाता है तो वह निगमित कानून में कोई प्रभाव नहीं डालता।

शब्द और वाक्यांश - संभव और व्यवहार्य-अर्थ-अभिनिर्धारित किया गया'' ''

मामला कानून संदर्भः

(1967) 2 एससीआर 77	उद्धृत	पैरा11
2008 (8) एससीआर 1148	उद्धृत	पैरा11
1996 (1) एससीआर 651	उद्धृत	पैरा 11
1990 (1) एससीआर 78	उद्धृत	पैरा 11,12
1970(3) एससीआर 233	भरोसा किया	पैरा 18
1979 (2) एससीआर 1038	भरोसा किया	पैरा 19
1985 (2)पूरक एससीआर 1075	भरोसा किया	पैरा 20
1986 (1) एससीआर 371	भरोसा किया	पैरा 20
2002 (2) पूरक एससीआर 636	भरोसा किया	पैरा 20

1999(2)एससीआर 589	भरोसा किया	पैरा 20
1997 (1) पूरक एससीआर 499	भरोसा किया	पैरा 22
1977(1)एससीआर 1037	भरोसाकिया	पैरा24
1955 एससीआर 108	भरोसा किया	पैरा 28
(1990) 4 एस.सी.सी 90	भरोसा किया	पैरा 29
1996(5) पूरक एससीआर 104	भरोसा किया	पैरा 30
(1995) 4 एससीसी 275	भरोसा किया	पैरा31
1996(10)पूरकएस.सी.आर.457	भरोसा किया	पैरा31
(2005) 12 एस.सी.सी. 364	भरोसा किया	पैरा 31
2007(5)एससीआर 1128	भरोसाकिया	पैरा 31

अपीलकर्ताओं के लिए:-एलएन राव, संतोष कृष्णन, कृष्ण देव, सैंथिल जगदीसान और सोनी भट्ट, अधिवक्ता।

प्रतिवादियों के लिए:- राकेश द्विवेदी, राजीव दत्ता, एस.रमेश, के.के. मोहन, संस्कृति पाठक, कुमार दुष्यंत सिंह, आशीष मोहन, अरिजीत सिंह, धर्मेेन्द्र कुमार सिन्हा, हिमांशु मुंशी, मनोज कुमार, कर्ण और राजेश कुमार। वकालत.

(1) याचिका स्वीकृत

2. विशेष अनुमति द्वारा यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर 2007 की रिट याचिका संख्या 14594 को खारिज कर दिया गया है और 2006 की एमए संख्या 90 में ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए आदेश को बरकरार रखा गया, चाहे वह उस आधार के अलावा किसी अन्य आधार पर हो जिस पर अपीलीय न्यायाधिकरण ने उसे समर्थन दिया था।

3. रिट याचिका दायर करने के तथ्य अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में काफी विस्तार से बताए गए हैं। इसलिए, हम संपूर्ण इतिहास को दोबारा दोहराना आवश्यक नहीं समझते, सिवाय उस हद तक जब तक कि यह वर्तमान अपील के निपटान के लिए आवश्यक न हो। पिछले दो दशकों से चली आ रही लंबी कानूनी लड़ाई की उत्पत्ति उस ऋण से हुई है जिसे प्रतिवादी इंडियन बैंक ने मेसर्स सनराईज प्लाजा को दिया था। सनराईज प्लाजा, एक साझेदारी संस्था, जिसमें प्रतिवादी-एस शामिल है। प्रतिवादी एस कल्याणसुंदरम और उनकी पत्नी - श्रीमती वसंता कल्याणसुंदरम। ऋण फर्म के साझेदारों के स्वामित्व वाली संपत्तियों के संबंधित स्वामित्व विलेखों को जमा करके समान बंधक के आधार पर दिया गया था। उधारकर्ता द्वारा ऋण राशि के पुनर्भुगतान में चूक करने पर, प्रतिवादी - बैंक ने चेन्नई में ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष 1998 के OA नंबर 238 को 2001 के OA नंबर 1098 के रूप में पुनः क्रमांकित किया। उत्तरदाताओं के उपस्थित

होने और उनके खिलाफ किए गए दावे का विरोध करने में विफलता के परिणामस्वरूप 20 सितंबर, 1999 को बैंक के पक्ष में एक पक्षीय डिक्री पारित की गई। तब उक्त डिक्री को रद्द करने के लिए एक आवेदन उधारकर्ता प्रतिवादियों द्वारा किया गया था जिसे ट्रिब्यूनल ने डिफॉल्ट के कारण खारिज कर दिया था। उक्त आदेश को वापस लेने का एक आवेदन भी विफल हो गया और ट्रिब्यूनल द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. इस बीच बैंक के पक्ष में जारी रिकवरी सर्टिफिकेट के निष्पादन की कार्यवाही शुरू की गई और बैंक के पास गिरवी रखी गई संपत्ति को 7 मार्च, 2003 को एक सार्वजनिक नीलामी में बिक्री के लिए लाया गया, जिसमें अपीलकर्ता सफल बोलीदाताओं के रूप में उभरे। इसके बाद उत्तरदाताओं ने नीलामी बिक्री को रद्द करने के लिए 2003 की आईए संख्या 146 दायर की, जबकि उनके द्वारा दायर 2003 की आईए संख्या 150 ने बिक्री की पुष्टि से इनकार करने के आदेश के लिए प्रार्थना की। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने उक्त आवेदन में एक सशर्त आदेश पारित किया, जिसमें निर्णय - देनदार द्वारा 25 अप्रेल, 2003 को या उससे पहले डिक्री धारक बैंक के पास 10,00,000/- की राशि जमा करने की शर्त पर बिक्री की पुष्टि को स्थगित कर दिया गया। आईए नंबर 146 हालाँकि, बिक्री को रद्द करने के लिए 2003 की याचिका को ट्रिब्यूनल ने 15 अप्रेल, 2003 को खारिज कर दिया था, क्योंकि यह पोषण योग्य नहीं थी। ट्रिब्यूनल द्वारा निर्देशित राशि जमा करने के लिए समय बढ़ाने के लिए उत्तरदाताओं - निर्णय-

देनदारों द्वारा की गई प्रार्थना को खारिज कर दिया गया, वसूली अधिकारी ने आगे बढ़कर 28 मई, 2003 को अपीलकर्ताओं के पक्ष में एक बिक्री प्रमाण पत्र जारी किया। निर्णित ऋणी - प्रतिवादी संख्या 1 से 3 ने फिर ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों को चुनौती देते हुए एक अपील दायर की जिसमें अपीलीय न्यायाधिकरण ने उन्हें अपेक्षित अदालत शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया।

5. अपीलीय न्यायाधिकरण के आदेश से व्यथित होकर, निर्णित ऋणियों ने 2003 की रिट याचिका संख्या 28235 दायर की, जिसमें उच्च न्यायालय ने 14 अक्टूबर, 2003 के एक आदेश द्वारा लागत के भुगतान पर एक पक्षीय डिक्री को रद्द कर दिया। उस आदेश को जब डिक्री धारक बैंक ने इस न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका में चुनौती दी, तो उसे स्वीकार कर लिया गया और एसएलपी को जुलाई 2004 में खारिज कर दिया गया। विशेष अनुमति याचिका के खारिज होने से प्रभावित हुए बिना, बैंक ने समीक्षा के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक समीक्षा आवेदन दायर किया। 14 अक्टूबर, 2003 के अपने आदेश में एकपक्षीय डिक्री को रद्द कर दिया गया। यहां तक कि अपीलकर्ताओं ने भी उक्त आदेश के खिलाफ एक समीक्षा याचिका दायर की थी, जिसे उच्च न्यायालय ने नीलामी क्रेता-अपीलकर्ताओं को उसके समक्ष लंबित ओए में ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया था।

6. अपीलकर्ता - नीलामी खरीददारों ने उस स्तर पर चेन्नई में ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष 2005 का आईए नंबर 20 दायर किया और उनके द्वारा खरीदी गई संपत्ति के कब्जे की मांग की। उस आवेदन को ट्रिब्यूनल ने वसूली अधिकारी को यह निर्देश के साथ अनुमति दे दी थी कि वह नीलामी खरीददारों को संबंधित संपत्ति पर कब्जा दे दे। इसमें बचाव पक्ष-प्रतिवादियों ने 2006 के एमए नंबर 90 में कई आधारों पर चेन्नई में अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष उस आदेश को चुनौती दी। अपीलीय न्यायाधिकरण ने उक्त अपील की अनुमति दी और ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा ऋण वसूली के निर्देश के साथ पारित आदेश को रद्द कर दिया। ट्रिब्यूनल 2005 के आईए नंबर 20 को 2001 के ओए नंबर 1098 के साथ लेगा और कानून के अनुसार इसका निपटान करेगा।

7. अपीलकर्ताओं ने 2006 की रिट याचिका संख्या 29356 में उपरोक्त आदेश की शुद्वता पर सवाल उठाया था, जिसे उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने 29 नवंबर, 2006 के आदेश द्वारा अनुमति दी थी, अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया था और इस मुद्दे को तय करने के लिए ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण के पास वापस जाएं कि क्या नीलामी बिक्री आयोजित करने के आधार पर एकतरफा डिक्री को अंततः रद्द कर दिया जाता है, तो वास्तविक क्रेता के अधिकारों में कटौती की जाती है या नहीं। ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण ने मामले की नए सिरे से जांच की और माना कि

अपीलकर्ता - नीलामी खरीदार संपत्ति के वास्तविक खरीदार नहीं थे क्योंकि उन्हें बैंक और उधारकर्ता के बीच लंबित कानूनी कार्यवाही के बारे में पता था। तदनुसार, ट्रिब्यूनल ने प्रतिवादियों - उत्तरदाताओं 1 से 3 को मूल आवेदन में दावा की गई पूरी राशि जमा करने के निर्देश के साथ बिक्री को रद्द कर दिया।

8. अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों से व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2007 की रिट याचिका संख्या 14594 दायर की, जो रिट याचिका उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई है जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है। उच्च न्यायालय ने मुद्दों को थोड़े अलग दृष्टिकोण से देखा: इस सवाल पर जाने के बजाय कि क्या अपीलकर्ता वास्तविक नीलामी खरीदार थे, उसने नीलामी की वैधता की ही जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रावधानों का अनुपालन न करने के कारण वसूली अधिकारी द्वारा की गई नीलामी अवैध और शून्य थी। (बाद के उल्लिखित अधिनियम के तहत बकाया ऋण की वसूली के लिए) (आयकर अधिनियम, 1961 की दूसरी अनुसूची में नियम 57 जो बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 (इसके बाद संक्षेप में 'आरडीडीबी अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 29 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए लागू थे) वर्तमान अपील उच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश की सत्यता पर सवाल उठाती है।

9. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री एल. नागेश्वर राव ने अपने मामले के समर्थन में तीन बार दलीलें दीं। सबसे पहले उन्होंने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा पहले दौर में पारित रिमांड आदेश अपीलीय न्यायाधिकरण तक ही सीमित था, जिसमें यह पता लगाया गया था कि क्या नीलामी की पूर्व-पक्षीय डिक्री को रद्द करने के मद्देनजर एक वास्तविक खरीदार के अधिकारों में कटौती की गई थी, जबकि ट्रिब्यूनल ने उस प्रश्न का उत्तर दिया था, उच्च न्यायालय अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका में ऐसा करने में विफल रहा था। उच्च न्यायालय ने विषय से भटक कर एक नया आयाम जोड़ दिया था जिस पर पहले के दौर में ध्यान नहीं दिया गया था या उस पर जोर नहीं दिया गया था।

10. दूसरे, उन्होंने तर्क दिया कि भले ही उच्च न्यायालय उस आधार के अलावा किसी अन्य आधार की जांच कर सकता है जिस पर रिमांड का आदेश दिया गया था, वह यह समझने में विफल रहा कि आयकर अधिनियम की दूसरी अनुसूची में निर्धारित आयकर नियमों के प्रावधान केवल'' ''

राव के अनुसार, यह आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 को पढ़ने से स्पष्ट था। विद्वान वकील ने तर्क दिया, ''जहाँ तक संभव हो'' और ''आवश्यक संशोधनों के साथ'' अभिव्यक्तियों के उपयोग ने रिकवरी अधिकारी को उक्त नियमों को उनके द्वारा सबसे उपयुक्त समझे जाने वाले तरीके से किसी दिए

गए मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ लागू करने के लिए पर्याप्त मौका दिया। श्री राव ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने धारा 29 में दिखाई देने वाली अभिव्यक्तियों को नजरअंदाज करने और मामले को इस तरह आगे बढ़ाने में गलती की है जैसे कि उक्त नियमों का नियम 57 अनिवार्य था और पूरी ताकत से लागू था। विद्वान वकील द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि यदि आयकर नियमों के नियम 57 और 58 को उसी रूप में लागू माना जाता है जिसमें वे दूसरी अनुसूची में आते हैं, तो उक्त नियमों के नियम 61 की आवश्यकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और उन्हें ऐसा करना होगा, की अनिवार्य रूप से पालन किया जावे। चूंकि बिक्री को रद्द करने के लिए निर्णय- देनदार द्वारा दायर अंतरिम आवेदन को ट्रिब्यूनल द्वारा खारिज कर दिया गया था और चूंकि उक्त बर्खास्तगी आदेश को किसी भी स्तर पर कोई चुनौती नहीं थी, इसलिए उच्च न्यायालय को यह मानना चाहिए था कि इसके लिए पूर्ववर्ती शर्त उचित आवेदन दाखिल करने से संतुष्ट नहीं होने पर बिक्री को रद्द कर दिया गया, जिससे अपीलकर्ताओं के पक्ष में बिक्री किसी भी चुनौती या हस्तक्षेप से मुक्त हो गई।

11. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा तीसरा तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता वास्तविक खरीदार थे, इसलिए उनके पक्ष में बिक्री में किसी भी हस्तक्षेप के खिलाफ संरक्षित थे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जिस आधार पर बिक्री की गई थी, उस डिक्री को खुद ही रद्द कर दिया गया था।

उच्च न्यायालय द्वारा इस न्यायालय के निर्णयों ***जनक राज बनाम गुरदयाल सिंह, (1967) 2 एससीआर 77, जनता टेक्सटाइल्स और अन्य, कर वसूली अधिकारी और अन्य, (2008) 12 एससीसी 582: (1994) 2 एससीसी 364, पदानाथिल रुक्मिणी अम्मा बनाम पीके अब्दुल्ला, 1996(3) आरसीआर (सिविल) 118: (1996) 7 एससीसी 668*** पर श्री राव द्वारा समर्थन का भरोसा रखा गया था। आगे यह तर्क दिया गया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि चिन्नम्मल और अन्य बनाम ***वी.पी. अरूमुघम और अन्य, (1990) 1 एससीसी 513*** मामले में इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा एक विपरीत दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था। लेकिन ऊपर उल्लिखित निर्णयों की दो पंक्तियों के बीच संघर्ष को एक बड़ी बेंच के संदर्भ में हल किया जाना चाहिए।

12.उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री राकेश द्विवेदी ने तर्क दिया कि दूसरे दौर में उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का दायरा किसी भी तरह से पहले के रिमांड आदेश द्वारा सीमित नहीं था और उच्च न्यायालय कर सकता था और वास्तव में नीलामी बिक्री की वैधता के प्रश्न की जांच की गई है। उन्होंने आग्रह किया कि अधिनियम की दूसरी अनुसूची में आयकर नियमों के प्रावधान उसी रूप में लागू होते हैं जिस रूप में उक्त नियम कानून की किताब में पाए गए थे क्योंकि किसी भी विधायी अधिनियम द्वारा या आरडीडीबी अधिनियम के तहत नियमों के माध्यम से, उक्त नियमों में कोई संशोधन नहीं किया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि

शब्द ''जहाँ तक संभव हो' यह बताने में असमर्थ है कि वसूली अधिकारी अपनी शक्ति या विवेक पर किसी भी सीमा के बिना और अधिनियम या नियमों के साथ खिलवाड़ कर सकता है। उन्होंने इस न्यायालय में उस फैसले को ***चिन्नम्मल और अन्य बनाम वी.पी. अरूमुघम और अन्य, (1990) 1 एससीसी 513*** में प्रस्तुत किया। श्री राव द्वारा लिए गए निर्णयों में लिए गए दृष्टिकोण के विरोध में नहीं था क्योंकि उक्त निर्णयों ने इस मुद्दे की जांच नहीं की थी कि प्रामाणिकता क्या होगी। क्रेता कानून में सुरक्षा का हकदार होगा। हम श्री राव द्वारा उठाए गए विवादों से निपटने का प्रस्ताव करते हैं।

13. रिट याचिका संख्या 29356/2006 में उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया रिमांड एक खुला रिमांड था जिसने पार्टियों को न केवल वास्तविक खरीदार के अधिकारों के संबंध में, बल्कि उनके लिए उपलब्ध किसी भी अन्य विवाद के संबंध में अपने संबंधित तर्कों पर जोर देने की अनुमति दी थी। तथ्यों और कानून पर, यह उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के ऑपरेटिव भाग से स्पष्ट है जो इस प्रकार था:

''उपरोक्त परिस्थितियों में, जैसा कि पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने सहमति व्यक्त की, ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा 2006 के एमए संख्या 90 में पारित आदेश दिनांक 13.07.2006 को रद्द कर दिया गया है और मामले को ऋण वसूली अपीलीय को उपरोक्त मुद्दों

और 2006 के एमए नंबर 90 में एक या अन्य पक्ष द्वारा उठाए गए किसी भी अन्य मुद्दे को निर्धारित करने के लिए, अधिमानतः इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति या उत्पादन की तारीख से दो महिने के भीतर ट्रिब्यूनल, चेन्नई भेज दिया गया है।

14. रिमांड आदेश में प्रयुक्त भाषा के अलावा, उच्च न्यायालय ने इस सवाल की जांच या निर्धारण नहीं किया था कि क्या आयकर नियमों का नियम 57 अनिवार्य था और यदि हां, तो क्या उस प्रावधान या उसके प्रभाव का कोई उल्लंघन हुआ था। उस पहले के निर्धारण को अंतिम रूप देने की बात तो दूर, कोई चर्चा भी नहीं हुई, ताकि किसी भी पक्ष को उन सवालों पर अपनी दलीलें पेश करने से रोका जा सके। ***उस दृष्टिकोण*** से हमें श्री राव के तर्क के पहले अंग को खारिज करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय रिमांड आदेश के बाद उत्पन्न होने वाली कार्यवाही में एक वास्तविक आदेश के बाद उत्पन्न होने वाली कार्यवाही में एक वास्तविक खरीदार के अधिकारों के अलावा किसी अन्य प्रश्न पर नहीं जा सकता था।

15. यह हमें इस सवाल पर लाता है कि क्या आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 आयकर अधिनियम की दूसरी अनुसूची में आयकर नियमों को आरडीडीबी अधिनियम के तहत वसूली कार्यवाही में पूरी ताकत से लागू नहीं करती है और यह अभिव्यक्ति 'जहां तक संभव हो धारा 29 में

उपस्थित होने से वसूली अधिकारी को प्रत्येक मामले की तथ्य परिस्थिति के आधार पर उक्त नियमों को लागू करने का विवेक प्राप्त होता है। आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 इस प्रकार हैः

29. आयकर अधिनियम के कुछ प्रावधानों का लागू होना - समय-समय पर लागू आयकर अधिनियम, 1961 और आयकर (प्रमाणपत्र कार्यवाही) नियम, 1962 की दूसरी और तीसरी अनुसूची के प्रावधान, जहां तक संभव हो, आवश्यक संशोधनों के साथ लागू होंगे। उक्त प्रावधान और नियम आयकर के बजाय इस अधिनियम के तहत देय ऋण की राशि को संदर्भित करते हैं.

बशर्ते कि उक्त प्रावधानों और नियमों के तहत "निर्धारिती" के किसी भी संदर्भ को इस अधिनियम के तहत प्रतिवादी के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।

16. उपरोक्त को पढ़ने से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि आयकर अधिनियम के तहत नियम केवल "जहाँ तक संभव हो" लागू थे और आयकर अधिनियम के बजाय आरडीडीबी अधिनियम संशोधन के साथ जैसे कि उक्त प्रावधान और नियम इसके तहत देय ऋण की राशि को संदर्भित करते हैं। सवाल यह है कि क्या उक्त दो अभिव्यक्तियाँ नियम 57 निर्देशिका के प्रावधानों को प्रस्तुत करती हैं, भले ही वे ऐसी भाषा में शामिल हों जो प्रकृति में स्पष्ट रूप से अनिवार्य है।

17. निगमन द्वारा विधान एक ऐसा उपकरण है जिसका सुविधा के लिए विधानमंडल अक्सर सहारा लेते हैं। यह घटना व्यापक रूप में प्रचलित है और इस देश के न्यायालयों के साथ-साथ विदेश के न्यायालयों द्वारा न्यायिक घोषणाओं का विषय रही है। न्यायमूर्ति जीपी सिंह ने वैधानिक व्याख्या के सिद्वांतों पर अपने प्रसिद्व कार्य में इस अवधारणा को निम्नलिखित शब्दों में समझाया हैः

> ''पहले के अधिनियम को बाद के अधिनियम में शामिल करना एक विधायी उपकरण है जिसे सुविधा के लिए अपनाया गया है ताकि पहले के अधिनियम के प्रावधानों को बाद के अधिनियम में शब्दशः पुनरूत्पादित करने से बचा जा सके। जब पहले के अधिनियम या उसके कुछ प्रावधानों को संदर्भ द्वारा शामिल किया जाता है बाद के अधिनियम में, इस प्रकार शामिल किए गए प्रावधान बाद के अधिनियम का हिस्सा और अभिन्न अंग बन जाते हैं जैसे कि उन्हें 'शारीरिक रूप से इसमें स्थानांतरित कर दिया गया हो।' किसी पूर्व अधिनियम के कुछ खंडो का संदर्भ लें, तो उसका कानूनी प्रभाव, जैसा कि अक्सर माना जाता है, उन अनुभागों को नए अधिनियम में लिखना है जैसे कि वास्तव में इसमें पेन के साथ लिखे गए थे, या उसमें मुद्रित किए गए थे।

भले ही पहले के अधिनिमय के केवल विशेष खंडों को बाद में शामिल किया गया हो, शामिल किए गए अनुभागों की व्याख्या करने में कई बार पहले के कानून के अन्य हिस्सों को संदर्भित करना आवश्यक और स्वीकार्य हो सकता है जिन्हें शामिल नहीं किया गया है। जैसा कि लॉर्ड ब्लैकबर्न ने कहा थाः

''जब संसद के किसी अधिनियम का एक खंड दूसरे अधिनियम में पेश किया जाता है, तो मुझे लगता है कि इसे उस अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए जो मूल अधिनियम में निहित है, जिससे इसे लिया गया था, और परिणामस्वरूप बाकी सभी को संदर्भित करना पूरी तरह से वैध है उस अधिनियम का यह सुनिश्चित करने के लिए धारा का क्या अर्थ है, हालांकि उन अन्य धाराओं को नए अधिनियम में शामिल नहीं किया गया है। ''

18. ***राम कृपाल भगत और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1969) 3 एससीसी 471*** में इस न्यायालय ने एक अधिनियम में पहले के अधिनियम के प्रावधानों को लाने के प्रभाव की जांच की और माना कि पहले के अधिनियम के प्रावधानों को बाद के अधिनियम में शामिल करने से कानून यह है कि प्रावधान इस

प्रकार शामिल किए गए को पहली बार बाद के कानून में शामिल किया गया माना जाता है। इस न्यायालय ने कहाः

> ''किसी अधिनियम में पहले के अधिनियम के प्रावधानों को लाने का प्रभाव पहले अधिनियम की सम्मिलित धाराओं को अगले अधिनियम में इस तरह पेश करना है जैसे कि वे प्रावधान पहली बार इसमें अधिनियमित किए गए हों। ऐसे कानून की प्रकृति ***रे वुड्स एस्टेट {1881} 31 अध्याय 607*** में लॉर्ड एशर एमआर द्वारा समझाया गया था कि ''यदि पूर्व अधिनियम के कुछ खंड बाद के अधिनियम में लाए गए थे तो कानूनी प्रभाव उन अनुभागों को नए अधिनियम में लिखना था जैसे कि उसमें कलम से लिखे गए थे' ।

19. इसी आदेश का समान प्रभाव ***महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य, (1979) 2 एससीसी 529*** में इस न्यायालय का निर्णय है, जहां इस न्यायालय ने माना था कि एक बार निगमन हो जाने के बाद, शामिल प्रावधान एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। कानून का वह भाग जिसमें इसे स्थानांतरित किया जाता है और उसके बाद उस कानून को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं है जिससे निगमन किया जाता है और इसमें किए गए किसी भी बाद के संशोधन का निगमन कानून पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस संबंध में निम्नलिखित परिच्छेद उपयुक्त हैः

''निगमन का प्रभाव ऐसा है जैसे कि प्रावधान को सम्मिलित कानून में लिखा गया था और वे इसका एक हिस्सा थे। निगमन द्वारा विधान विधायिका द्वारा नियोजित एक सामान्य विधायी उपकरण है, जहां मसौदा तैयार करने के लिए विधायिका एक मौजूदा प्रतिमा से प्रावधानों को शामिल करती है उस कानून के संदर्भ में उन प्रावधानों को विस्तार से निर्धारित करने के बजाय जिन्हें वह अपनाना चाहता है। एक बार निगमन हो जाने के बाद, शामिल प्रावधान उस कानून का एक अभिन्न अंग बन जाता है जिसमें इसे स्थानांतरित किया जाता है और उसके बाद संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है जिस कानून से निगमन किया गया है और उसमें किए गए किसी भी बाद के संशोधन का निगमन कानून पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।''

20. हम ***ओंकारलाल नंदलाल बनाम राजस्थान राज्य*** और अन्य में इस न्यायालय के निर्णयों का भी उल्लेख कर सकते हैं। ***(1985) 4 एससीसी 404, मैरी रॉय और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य। (1986) 2 एससीसी 209, नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम वसंतराव और अन्य। और जसवन्तीबाई और अन्य। 2002 (4) आरसीआर (सिविल) 551: (2002) 7 एससीसी 657, और मैसर्स सुराणा***

स्टील्स प्रा. लिमिटेड बनाम आयकर उपायुक्त और अन्य। (1999) 4 एससीसी 306, जिसने कानून के उपरोक्त प्रस्ताव को दोहराया है।

21. उपरोक्त सिद्धांतों को मौजूदा मामले में लागू करने से आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 में आरडीडीबी अधिनियम के तहत वसूली अधिकारी द्वारा बकाया राशि की वसूली के प्रयोजनों के लिए आयकर अधिनियम की दूसरी अनुसूची में पाए गए नियमों के प्रावधानों को शामिल किया गया है। आयकर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियम, धारा 29 में दिखाई देने वाली अभिव्यक्तियाँ "जहाँ तक संभव हो" और "आवश्यक संशोधनों के साथ" का उपयोग उन स्थितियों का ध्यान रखने के लिए किया गया है जहाँ आयकर नियमों के तहत कुछ प्रावधान आरडीडीबी अधिनियम के तहत योजना से भिन्न होने के कारण लागू नहीं हो सकते हैं। धारा 29 को सावधानीपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि नियमों के प्रावधान केवल उसी हद तक आकर्षित होते हैं, जब तक कि यह अधिनियम के तहत ऋणों की वसूली से संबंधित हैं, इस संशोधन के साथ कि नियमों में उल्लिखित 'ऋण की राशि है आरडीडीबी अधिनियम के तहत एक माना जाता है। उस संशोधन का उद्देश्य स्थिति को स्पष्ट करना और आरडीडीबी अधिनियम के तहत ऋणों की वसूली के लिए आयकर नियमों के आवेदन में किसी भी भ्रम से बचना था, जो कि उक्त अधिनियम के तहत वसूली के लिए नियमों

के शाब्दिक अनुप्रयोग से भ्रम पैदा हो सकता है। धारा 29 का प्रावधान आगे यह स्पष्ट करता है कि आयकर अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के तहत ''निर्धारिती के लिए'' किसी भी संदर्भ को आरडीडीबी अधिनियम के तहत प्रतिवादी के संदर्भ के रूप में माना जाएगा। उल्लेखनीय है कि आयकर नियम ऐसे प्रावधान करते हैं जो अधिनियम के तहत ऋण की वसूली से सख्ती से नहीं निपटते हैं। ऐसे नियम संभवतः आरडीडीबी अधिनियम के तहत ऋणों की वसूली पर लागू नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए, आयकर अधिनियम के तहत नियम 86 और 87 का आरडीडीबी अधिनियम के प्रावधानों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है, जबकि दूसरी अनुसूची में उक्त नियमों के नियम 57 और 58 देय राशि की वसूली की प्रक्रिया से संबंधित हैं और वर्तमान में नहीं। आरडीडीबी अधिनियम के तहत वसूली के लिए उन्हें लागू करने में कठिनाई आरडीडीबी अधिनियम के तहत वसूली योग्य ऋणों की वसूली, यह कहना पर्याप्त है कि आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 में ''जहाँ तक संभव हो'' शब्दों का उपयोग केवल यह दर्शाता है कि आयकर नियमों के प्रावधान उन पर लागू होते हैं, सिवाय इसके कि इस मामले में उनकी कोई भूमिका नहीं है। यह तर्क कि धारा 29 में ''जहाँ तक संभव हो'' शब्दों का उपयोग वसूली अधिकारी को उक्त नियमों को लागू करने या विशिष्ट तथ्य स्थितियों में इसे लागू न

करने का विवेक देने के लिए है, ने हमें प्रभावित नहीं किया है और तदनुसार खारिज कर दिया गया है।

22. ***उस्मानिया विश्वविद्यालय बनाम वीएस मुथुरंगा और अन्य, 1973(3) एससीटी 603: (1997) 10 एससीसी 741*** में, यह प्रश्न विचाराधीन था कि क्या उस्मानिया विश्वविद्यालय में गैर-शिक्षण कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति की आयु होनी चाहिए इसे बढ़ाकर 60 वर्ष कर दिया गया जबकि विश्वविद्यालय के शिक्षण स्टाफ के लिए इसे बढ़ाकर 60 वर्ष कर दिया गया। चूंकि उस्मानिया विश्वविद्यालय अधिनियम, 1959 की धारा 38(1) में कहा गया है कि विश्वविद्यालय के सभी वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए सेवा की शर्ते ''जहाँ तक संभव हो'' एक समान होंगी, मामले में निर्णय ने उसे दिए जाने वाले अर्थ को बदल दिया। विश्वविद्यालय की ओर से सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क दिया गया कि धारा 38(1) में इस वाक्यांश के उपयोग के संकेत मिलता है कि प्रावधान को कुछ स्थितियों में हटाया जा सकता है। इस न्यायालय ने अन्यथा फैसला सुनाया और इस प्रकार कहा:

''8......श्री सॉलिसिटर जनरल का यह तर्क उचित है कि अधिनियम की धारा 38(1) लचीलेपन को मान्यता देती है और अभिव्यक्ति 'जहाँ तक संभव हो' इसमें एक अंतर्निहित लचीलापन निहित है.......**लेकिन यदि सेवा की समान शर्तें विश्वविद्यालय के शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के**

लिए यह अन्यथा अव्यावहारिक नहीं है, अधिनियम की धारा 38(1) के अधिदेश के कारण विश्वविद्यालय ऐसी एकरूपता बनाए रखने के लिए बाध्य है। वर्तमान मामले में, हमें नहीं लगता कि यह विश्वविद्यालय के लिए शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों दोनों की सेवानिवृत्ति की आयु में समानता बनाए रखना बिल्कुल भी व्यवहारिक नहीं है। "

23. इसका तात्पर्य यह है कि जबकि वाक्यांश ''जहाँ तक संभव हो' , एक निश्चित अंतर्निहित लचीलेपन का संकेत हो सकता है, उस लचीलेपन का दायरा केवल उसी तक फैला हुआ है जो ''बिल्कुल भी व्यावहारिक नहीं है' '। यह दिखाने के लिए कि आयकर अधिनियम की दूसरी अनुसूची के नियम 57 और 58 को आरडीडीबी अधिनियम के तहत हटाया जा सकता है, यह साबित करना होगा कि इन नियमों का आवेदन आरडीडीबी अधिनियम ''बिल्कुल भी व्यावहारिक नहीं है।

24.''संभव'' और ''व्यावहारिक'' शब्दों का विनिमेय उपयोग पहले ***एनके चौहान और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (1977) 1 एससीसी 308*** में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीश पीठ द्वारा स्थापित किया गया था। जहां इस न्यायालय ने पाया कि सरल एंग्लो-सैक्सन में व्यावहारिक, व्यवहार्य, संभव, निष्पादन योग्य, कमोबेश विनमेय हैं। वेबस्टर 'व्यावहारिक' शब्द को इस प्रकार परिभाषित करता है:

1. जिसे व्यवहार में लाया जा सकता है: व्यवहार्य।

2. जिसका उपयोग किसी इच्छित उद्देश्य के लिए किया जा सकता है:

प्रयोग करने योग्य। "

25. ब्लैक लॉ डिक्शनरी इसी प्रकार 'व्यवहार्य को इस प्रकार परिभाषित करती है:-

"(किसी चीज के बारे में) यथोचित रूप से पूरा करने में सक्षम: संभव। "

26. इसलिए, यह मानना उचित है कि आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 में प्रयुक्त वाक्यांश "जहाँ तक संभव हो" का सबसे अच्छा मतलब यह हो सकता है कि योजना और कानून के संदर्भ के संबंध में आयकर नियम लागू नहीं हो सकते हैं, जहाँ उन्हें लागू करना बिल्कुल भी संभव नहीं है।

27. आरडीडीबी अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों या आयकर अधिनियम के तहत नियमों की योजना में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे कि धारा 29 के तहत वसूली अधिकारी को ऊपर बताए गए विवेक से अधिक विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए। आरडीडीबी अधिनियम या आयकर नियमों का नियम 57 जो इस प्रकार है:

"57. (1) अचल संपत्ति की प्रत्येक बिक्री पर, क्रेता घोषित व्यक्ति, ऐसी घोषणा के तुरंत बाद, बिक्री का संचालन करने वाले अधिकारी को अपनी खरीद राशि पर पच्चीस प्रतिशत की जमा राशि का भुगतान करेगा

और ऐसी जमा राशि के डिफॉल्ट होने पर, संपत्ति को तुरंत फिर से बेच दिया जाएगा।

(2) देय खरीद राशि की पूरी राशि क्रेता द्वारा संपत्ति की बिक्री की तारीख से पन्द्रहवें दिन या उससे पहले कर वसूली अधिकारी को भुगतान की जाएगी।

28. उपरोक्त को स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट है कि प्रावधान अनिवार्य है। शब्द ''करेगा का उपयोग शाब्दिक और प्रासंगिक दोनों ही रूप से राशि जमा करने को अनिवार्य आवश्यकता बनाने का संकेत है। आयकर नियमों के नियम 57 और 58 के प्रावधान, सीपीसी के आदेश 21 नियम 84, 85 और 86 के समकक्ष हैं, जो भाषा, व्यापक और प्रभाव में समान हैं और मणिलाल में इस न्यायालय द्वारा अनिवार्य माना गया है। ***[मोहनलाल शाह और अन्य बनाम सरकार सैयद अहमद सैयद महम्मद और अन्य, (एआईआर 1954 सुप्रीम कोर्ट 349)]*** निम्नलिखित शब्दों में है:-

> ''8. जैसा कि नियम की भाषा से पता चलता है, डिक्री-धारक के अलावा अन्य क्रेता द्वारा 25 प्रतिशत जमा करने के संबंध में प्रावधान अनिवार्य है। खरीद-पैसा की पूरी राशि का भुगतान तारीख से पन्द्रह दिनों के भीतर किया जाना चाहिए। बिक्री लेकिन डिक्री-धारक सेट-ऑफ के लाभ का हकदार है। भुगतान का प्रावधान, हालांकि, अनिवार्य है .....

(नियम 85)। यदि भुगतान पन्द्रह दिनों की अवधि के भीतर नहीं किया जाता है, तो न्यायालय ने जमा राशि जब्त करने का विवेकाधिकार, और यहीं विवेक समाप्त हो जाता है लेकिन संपत्ति को फिर से बेचने का न्यायालय का दायित्व अनिवार्य है। भुगतान न करने का एक और परिणाम यह है कि चूक करने वाला क्रेता संपत्ति पर सभी दावे खो देता है (नियम 86)। ..

9. ये प्रावधान इसमें कोई संदेह नहीं छोडते हैं कि जब तक जमा और भुगतान नियमों के अनिवार्य प्रावधानों के अनुसार नहीं किया जाता है, तब तक कानून की नजर में चूककर्ता क्रेता के पक्ष में कोई बिक्री नहीं होती है और स्वामित्व और स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं होता है।

xxxxxxxxxx

11. प्रासंगिक नियमों की भाषा और विषय से संबंधित न्यायिक निर्णयों की जांच करने के बाद हमारी राय है कि नियमों के प्रावधानों में 25 प्रतिशत जमा करने की आवश्यकता है। क्रेता घोषित किए जाने वाले व्यक्ति को तुरंत खरीद-पैसा देना और शेष राशि का भुगतान बिक्री के 15 दिनों के भीतर करना अनिवार्य है और इन प्रावधानों का अनुपालन न करने पर कोई बिक्री नहीं होती है। नियम इस

बात पर विचार नहीं करते कि 25 प्रतिशत जमा किए बिना क्रेता के पक्ष में कोई बिक्री हो सकती है। पहली बार में खरीद-पैसा और 15 दिनों के भीतर शेष राशि। जब इन नियमों के दायरे में कोई बिक्री नहीं होती है, तो बिक्री के संचालन में भौतिक अनियमितता का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। डिफॉल्टर क्रेता की ओर से कीमत का भुगतान न करने पर बिक्री की कार्यवाही पूरी तरह से रद्द हो जाती है। तथ्य यह है कि न्यायालय डिफॉल्ट की स्थिति में संपत्ति को फिर से बेचने के लिए बाध्य है, यह दर्शाता है कि बिक्री के लिए पिछली कार्यवाही पूरी तरह से मिटा दी गई है जैसे कि वे कानून की नजर में मौजूद ही नहीं हैं। इसलिए, हमारा मानना है कि वर्तमान मामले की परिस्थितियों में कोई बिक्री नहीं हुई और खरीदारों ने कोई अधिकार हासिल नहीं किया।''

29.मणिलाल मोहनलाल के मामले (सुप्रा) में आदेश 21 के नियम 84, 85 व 86 पर भरोसा करते हुए ***सरदार सिंह (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य वी. सरदारा सिंह (मृत) और अन्य, 1990 (2) आरआरआर 505: (1990) 4 एससीसी 90*** के मामले में भी अनिवार्य माना गया था।

30. इसी प्रकार ***बलराम पुत्र भासाराम बनाम इलम सिंह और अन्य, 1996 (3) आरसीआर (सिविल) 692: (1996)5 एससीसी 705*** में इस न्यायालय ने कानूनी स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में दोहराया:

''7...

यह स्पष्ट रूप से माना गया था {मणिलाल मोहनलाल में} कि नियम 85 अनिवार्य है, इसका गैर-अनुपालन बिक्री की कार्यवाही को पूरी तरह से अमान्य कर देता है, जिसके लिए कार्यकारी अदालत को नियम 86 के तहत आगे बढ़ने की आवश्यकता होती है और संपत्ति को तब तक फिर से बेचना पड़ता है जब तक कि फैसला न हो जाए - देनदार पुनर्विक्रय से पहले भुगतान करके डिक्री को संतुष्ट करता है। यह तर्क भी स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया कि निष्पादन न्यायालय के पास अपनी गलती के आधार पर समय बढ़ाने की अंतर्निहित शक्ति है।

31. हम ***राव महमूद अहमद खान बनाम श्री रणबीर सिंह और अन्य, (1954) 4 एससीसी 275, गंगाबाई गोपालदास मोहता बनाम फूलचंद और अन्य, 1997 (1) आरसीआर (सिविल) 734: (1997) 10 एससीसी 387, हिमाद्रि कोक एंड पेट्रो लिमिटेड बनाम सोनेको डेवलपर्स (पी) लिमिटेड और अन्य, (2005) 12 एससीसी 364 और शिल्पा शेयर्स एंड सिक्योरिटीज और अन्य। वी. नेशनल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड और***

अन्य, (2007) 12 एससीसी 165 में इस न्यायालय के निर्णयों का भी उल्लेख कर सकते हैं जिसमें वही स्थिति ली गई है।

32. उपरोक्त के प्रकरण में हमें यह मानने का कोई कारण नहीं दिखता कि आयकर नियमों के नियम 57 और 58 अनिवार्य प्रकृति के हैं, इसलिए कानून की नजर में उन नियमों के तहत आवश्यकताओं का उल्लंघन नीलामी को गैर-स्थायी बना देगा।

33. यह हमें श्री राव द्वारा की गई तीसरी और एकमात्र अन्य दलील के साथ छोड़ता है जो वास्तविक क्रेता के अधिकारों से संबंधित है और क्या इस विषय पर इस न्यायालयों के निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास है जिसे एक बड़ी पीठ के संदर्भ के लिए बुलाया जाना चाहिए। हमारी राय में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिन निर्णयों पर पार्टियों के विद्वान वकील ने भरोसा जताया था, उनके बीच स्पष्ट विरोधाभास है। लेकिन इस नीलामी की वैधता के सवाल पर हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसे ध्यान में रखते हुए, हम इस विवाद को सुलझाने के लिए किसी बड़ी पीठ को संदर्भित करना आवश्यक नहीं समझते हैं। न्यायिक राय में दरार वर्तमान मामले के लिए केवल अकादमिक महत्व की है, इसलिए वर्तमान में हमारे द्वारा या किसी बड़ी पीठ द्वारा इस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

34. परिणामस्वरूप, यह अपील विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है, लेकिन ऐसी परिस्थितियों में लागत के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील खारिज.

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल **'सुवास'** की सहायता से अनुवादक **प्रदीप कुमावत** द्वारा किया गया है।

अस्वीकारण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।